14

कुटज

(आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी)

क्या आपके साथ कभी ऐसा हुआ कि आपको ज़रा-सा कष्ट हुआ और आप घबरा गए, अपने जीवन को, अपनी इस अमूल्य मानव देह को कोसने लगे और कल्पना करने लगे उस 'सुखी' ज़िंदगी की, जहाँ न रोज़-रोज़ का झंझट हो, न दैनिक जीवन के कार्य करने पड़ें, न किसी गलत कार्य करने पर बड़ों से डाँट पड़े न मार का डर हो, न ही किसी और प्रकार की चिंता। जहाँ बस सुख ही सुख हो। ऐसी कल्पना करते-करते कभी आपको पक्षियों से भी ईर्ष्या हुई होगी कि वाह! क्या! मजे हैं! जहाँ चाहे जब चाहे झट से उड़ कर पहुँच जाते हैं। ऐसा हुआ है न कभी-कभी?

अब ज़रा सोचिए कि इसका कारण क्या है? इसका कारण है-'सही प्रकार से जीने की कला न आना।' जिस दिन आप यह कला सीख जाएँगे, उस दिन आपका जीवन सुखमय हो जाएगा। कितनी ही मुश्किलें क्यों न आएँ, आप हिम्मत नहीं हारेंगे, परेशान नहीं होंगे।

तो आइए, यह कला सीखें, किसी स्कूल से नहीं, किसी बड़े ज्ञानी, विद्वान महापुरुष से भी नहीं, महज एक छोटे से ठिगने से पेड़ 'कुटज' से।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप:

- 'कुटज' शब्द की उत्पत्ति और अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे;
- 'कुटज' से प्रेरणा लेकर कठिन परिस्थितियों में भी प्रसन्नतापूर्वक और दृढ़ता से जीने की कला के विषय में लिख सकेंगे;
- 'कुटज' के नि:स्वार्थ गुणों का वर्णन करते हुए प्रकृति के संदेशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- ललित निबंध की विशेषताएँ स्पष्ट करते हुए 'कुटज' का विश्लेषण कर सकेंगे;
- पाठ में प्रयुक्त सूक्तिपरक वाक्यों की व्याख्या कर सकेंगे;
- निबंध की आलंकारिक और वर्णनात्मक शैली पर टिप्पणी कर सकेंगे।

क्रियाकलाप 14.1

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

(क) अपने आस-पास आपने ऐसे पेड़-पौधे लगे देखें होंगे जिन्हें, बहुत देखभाल की आवश्यकता होती है। माली खाद, पानी, गुड़ाई आदि समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार करता है। ऐसे किन्हीं पाँच पेड़-पौधों के नाम यहाँ लिखिए :

....

....

(ख) आपने अपने आस-पास ऐसे पेड़-पौधे ज़रूर देखे होंगे जो साल भर सिर्फ़ बरसात के पानी पर जीवित रहते हैं। उन्हें कोई नहीं सींचता। ऐसे किन्हीं पाँच पेड़-पौधों के नाम यहाँ पर लिखिए :

....

....

14.1 मूल पाठ

आइए, 'कुटज' नामक निबंध को एक बार ध्यान से पढ़ लेते हैं। साथ ही सहायता के लिए दिए गए कठिन शब्दों के अर्थ भी समझते चलते हैं।

कुटज

कहते हैं, पर्वत शोभा-निकेतन होते हैं। फिर हिमालय का तो कहना ही क्या! पूर्व और अपर समुद्र-महोदधि और रत्नाकर-दोनों को दोनों भुजाओं से थामता हुआ हिमालय पृथ्वी का 'मानदंड' कहा जाय तो गलत क्या है? कालिदास ने ऐसा ही कहा था। इसी के पाद-देश में यह श्रृंखला दूर तक लोटी हुई है, लोग इसे 'शिवालिक' श्रृंखला कहते हैं। 'शिवालिक' का क्या अर्थ है? 'शिवालिक' या शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा तो नहीं है? लगता तो ऐसा ही है। 'सपादलक्ष' या सवा लाख की मालगुजारी वाला इलाका तो वह लगता नहीं! शिव की लटियाई जटा ही इतनी सूखी, नीरस और कठोर हो सकती है। वैसे, अलकनंदा का स्रोत यहाँ से काफ़ी दूरी पर है, लेकिन शिव का अलक तो दूर-दूर तक छितराया ही रहता होगा। संपूर्ण हिमालय को देखकर ही किसी के मन में समाधिस्थ महादेव की मूर्ति स्पष्ट हुई होगी। उसी समाधिस्थ महादेव के अलक-जाल के निचले हिस्से का प्रतिनिधित्व यह गिरिश्रृंखला कर रही होगी। कहीं-कहीं अज्ञात-नाम-गोत्र झाड़-झंखाड़ और बेहया-से पेड़ खड़े दिख अवश्य जाते हैं, पर कोई हरियाली नहीं। दूब तक सूख गई है। काली-काली चट्टानें और बीच-बीच में शुष्कता की अंतर्निरुद्ध सत्ता का इजहार करने वाली रक्ताभ रेती है! रस कहाँ है? ये जो ठिंगने-से लेकिन शानदार दरख्त गर्मी की भयंकर मार खा-खाकर और भूख-प्यास की निरंतर

शब्दार्थ

महोदधि	- समुद्र
अपर	- अन्य, दूरवर्ती
पाद-देश	- हिमालय के दक्षिण में स्थित प्रदेश
लटियाई जटा	- जटा, उलझे हुई बालों का समूह

चोट सह-सहकर भी जी रहे हैं, इन्हें क्या कहूँ? सिर्फ जी ही नहीं रहे हैं, हँस भी रहे हैं। बेहया हैं क्या? या मस्तमौला हैं? कभी-कभी जो लोग ऊपर से बेहया दिखते हैं, उनकी जड़ें काफ़ी गहरे पैठी रहती हैं। ये भी पाषाण की छाती फाड़कर न जाने किस अतल गह्वर से अपना भोग्य खींच लाते हैं।

शिवालिक की सूखी नीरस पहाड़ियों पर मुस्कराते हुए ये वृक्ष द्वंद्वातीत हैं, अलमस्त हैं। मैं किसी का नाम नहीं जानता, कुल नहीं जानता, शील नहीं जानता, पर लगता है, ये जैसे मुझे अनादि काल से जानते हैं। इन्हीं में एक छोटा-सा-बहुत ही ठिंगना-पेड़ है, पत्ते चौड़े भी हैं, बड़े भी हैं। फूलों से तो ऐसा लदा है कि कुछ पूछिए नहीं। अजीब-सी अदा है, मुस्कराता जान पड़ता है। लगता है, पूछ रहा है कि क्या तुम मुझे नहीं पहचानते? पहचानता तो हूँ, अवश्य पहचानता हूँ। लगता है, बहुत बार देख चुका हूँ, पहचानता हूँ उजाड़ के साथी, तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। नाम भूल रहा हूँ। प्रायः भूल जाता हूँ। रूप देखकर प्रायः पहचान जाता हूँ, नाम नहीं याद आता। पर नाम ऐसा है कि जब तक रूप के पहले ही हाज़िर न हो जाए, तब तक रूप की पहचान अधूरी रह जाती है। भारतीय पंडितों का सैकड़ों बार का कचारा-निचोड़ा प्रश्न सामने आ गया-रूप मुख्य है या नाम? नाम बड़ा है या रूप? पद पहले है या पदार्थ? पदार्थ सामने है, पद नहीं सूझ रहा है। मन व्याकुल हो गया, स्मृतियों के पंख फैलाकर सुदूर अतीत के कोनों में झाँकता रहा। सोचता हूँ, इसमें व्याकुल होने की क्या बात है? नाम में क्या रखा है-व्हाट्स देअर इन ए नेम! नाम की जरूरत ही हो तो सौ दिए जा सकते हैं- सुस्मिता, गिरिकांता, वनप्रभा, शुभ्रकिरीटिनी, मदोद्धता, विजितातपा, अलकावतंसा, बहुत-से नाम हैं। या फिर पौरुष - व्यंजक नाम भी दिए जा सकते हैं - अकुतोभय, गिरिगौरव, कूटोल्लास, अपराजित, धरती धकेल, पहाड़फोड़, पातालभेद! पर मन नहीं मानता। नाम इसलिए बड़ा नहीं है कि वह नाम है। वह इसलिए बड़ा होता है कि उसे सामाजिक स्वीकृति मिली होती है। रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज-सत्य है। नाम उस पद को कहते हैं, जिस पर समाज की मुहर लगी होती है, आधुनिक शिक्षित लोग जिसे 'सोशल सैंक्शन' कहा करते हैं। मेरा मन नाम के लिए व्याकुल है, समाज द्वारा स्वीकृत, इतिहास द्वारा प्रमाणित, समष्टि-मानव की चित्त-गंगा में स्नात!

चित्र 14.1: कुटज वृक्ष

इस गिरिकूट-बिहारी का नाम क्या है? मन दूर-दूर तक उड़ रहा है-देश में और काल में-मनोरथानामगतिर्नविद्यते! अचानक याद आया-अरे, यह तो कुटज है! संस्कृत साहित्य का बहुत परिचित, किंतु कवियों द्वारा अवमानित, यह छोटा-सा शानदार वृक्ष 'कूटज' है। 'कुटज' कहा गया होता तो कदाचित् ज़्यादा अच्छा होता। पर नाम इसका चाहे कुटज ही हो, विरुद तो निस्संदेह 'कुटज' होगा। गिरिकूट पर उत्पन्न होने वाले इस वृक्ष को 'कूटज' कहने में विशेष आनंद मिलता है। बहरहाल, यह कूटज-कुटज है, मनोहर कुसुम-स्तबकों से झबराया, उल्लास-लोल चारुस्मित कुटज! जी भर आया। कालिदास ने 'आषाढ़स्य प्रथम-दिवसे'

शब्दार्थ

अंतर्निरुद्ध	-	भीतर रोका हुआ
इजहार	-	प्रकट करना
रक्ताभ	-	लाल, रक्तिम
द्वंद्वातीत	-	किसी प्रकार के द्वंद्व से परे
कचारा-निचोड़ा	-	जिस पर बार-बार तर्क और विचार किया जा चुका हो
पद	-	नाम
वनप्रभा	-	जंगल की शोभा
शुभ्रकिरीटिनी	-	श्वेत (उज्जवल) मुकुट धारण करने वाली
मदोद्धता	-	अभिमानी
विजितातपा	-	जिसने धूप को जीत लिया
अपराजित	-	अजेय, जो जीता न गया हो
सोशल सैक्शन	-	समाज द्वारा मान्यता प्राप्त
समष्टि	-	सामूहिकता, समूह
स्नात	-	स्नान किया हुआ, पवित्र

रामगिरि पर यक्ष को जब मेघ की अभ्यर्थना के लिए नियोजित किया तो कम्बख्त को ताज़े कुटज पुष्पों की अंजलि देकर ही संतोष करना पड़ा–चंपक नहीं, बकुल नहीं, नीलोत्पल नहीं, मल्लिका नहीं, अरविंद नहीं–फकत कुटज के फूल! यह और बात है कि आज आषाढ़ का नहीं, जुलाई का पहला दिन है। मगर फर्क भी कितना है! बार-बार मन विश्वास करने को उतारू हो जाता है कि यक्ष बहाना मात्र है, कालिदास ही कभी 'शापेनास्तंगमितमहिमा' (शाप से जिनकी महिमा अंत हो गई हो) होकर रामगिरि पहुँचे थे, अपने ही हाथों इस कुटज पुष्प का अर्घ्य देकर उन्होंने मेघ की अभ्यर्थना की थी। शिवालिक की इस अनत्युच्च पर्वतश्रृंखला की भाँति रामगिरि पर भी उस समय और कोई फूल नहीं मिला होगा। कुटज ने उनके संतप्त चित्त को सहारा दिया था–बड़भागी फूल है यह! धन्य हो कुटज, तुम 'गाढ़े के साथी' हो। उत्तर की ओर सिर उठाकर देखता हूँ, सुदूर तक ऊँची काली पर्वतश्रृंखला छाई हुई है और एकाध सफेद बादल के बच्चे उससे लिपटे खेल रहे हैं। मैं भी उन पुष्पों का अर्घ्य उन्हें चढ़ा दूँ? पर काहे वास्ते? लेकिन बुरा भी क्या है?

कुटज के ये सुंदर फूल बहुत बुरे तो नहीं हैं। जो कालिदास के काम आया हो, उसे ज़्यादा इज़्जत मिलनी चाहिए। मिली कम है। पर इज़्जत तो नसीब की बात है। रहीम को मैं बड़े आदर के साथ स्मरण करता हूँ। दरियादिल आदमी थे, पाया सो लुटाया। लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है। सुना है, रस चूस लेने के बाद रहीम को भी फेंक दिया गया था। एक बादशाह ने आदर के साथ बुलाया, दूसरे ने फेंक दिया! हुआ ही करता है। इससे रहीम का मोल घट नहीं जाता। उनकी फक्कड़ाना मस्ती कहीं गई नहीं। अच्छे-भले कद्रदान थे। लेकिन बड़े लोगों पर भी कभी-कभी ऐसी वितृष्णा सवार होती है कि गलती कर बैठते हैं। मन खराब रहा होगा, लोगों की बेरुखी और बेकद्रदानी से मुरझा गए होंगे–ऐसी ही मनःस्थिति में उन्होंने बिचारे कुटज को भी एक चपत लगा दी। झुँझलाए थे, कह दिया–

> वे रहीम अब बिरछ कहँ, जिनकर छाँह गँभीर।
> बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़, कुटज, करीर।।

गोया कुटज अदना-सा 'बिरछ' हो। 'छाँह' ही क्या बड़ी बात है, फूल क्या कुछ भी नहीं? छाया के लिए न सही, फूल के लिए तो कुछ सम्मान होना चाहिए। मगर कभी-कभी कवियों का भी 'मूड' खराब हो जाया करता है, वे भी गलत-बयानी के शिकार हो जाया करते हैं। फिर बागों से गिरिकूट-बिहारी कुटज का क्या तुक है।

कुटज अर्थात् जो कुट से पैदा हुआ हो। 'कुट' घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात् घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहे जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न हुए होंगे। कोई और बात होगी। संस्कृत में 'कुटहारिका' और 'कुटकारिका' दासी को कहते हैं। क्यों कहते हैं? 'कुटिया' या 'कुटीर' शब्द भी कदाचित इसी शब्द से सम्बद्ध हैं। क्या इस शब्द का अर्थ घर ही है? घर में काम-काज करने वाली दासी 'कुटकारिका' और 'कुटहारिका' कही ही जा सकती है। एक जरा गलत ढंग की दासी 'कुटनी' भी कही जा सकती है। संस्कृत में उसकी गलतियों को थोड़ा अधिक मुखर बनाने के लिए उसे कुट्टनी कह दिया गया है। अगस्त्य मुनि भी नारद जी की तरह दासी के पुत्र

शब्दार्थ

विरुद	–	कीर्ति, गाथा, प्रशंसा सूचक पदवी
नीलोत्पल	–	नीलकमल
चंपक	–	चंपा
बकुल	–	मौलसिरी
अरविन्द	–	कमल
मल्लिका	–	मोतिया, बेला
अर्घ्य	–	पूजन के लिए चढ़ावा
संतप्त	–	दुखी, उदास, खिन्न
सुदूर	–	बहुत दूर
फक्कड़ाना	–	फकीरों जैसी
कद्रदान	–	सम्मान, आदर देने वाला
वितृष्णा	–	तृष्णा (अभिलाषा) का अभाव
अदना	–	तुच्छ
गलतबयानी	–	कोई बात गलत ढंग से बताना

थे क्या? घड़े से पैदा होने की तो कोई तुक नहीं है, न मुनि कुटज के सिलसिले में, न फूल कुटज के। फूल गमले में होते अवश्य हैं, पर कुटज तो जंगल का सैलानी है। उसे घड़े या गमले से क्या लेना-देना। शब्द विचारोत्तेजक अवश्य है। कहाँ से आया? मुझे तो इसी में संदेह है कि यह आर्य भाषाओं का शब्द है भी या नहीं। एक भाषाशास्त्री किसी संस्कृत शब्द को एक से अधिक रूप में प्रचलित पाते थे, तो तुरंत उसकी कुलीनता पर शक कर बैठते थे। संस्कृत में 'कुटज' रूप भी मिलता है और 'कुटच' भी। मिलने को तो 'कूटज' भी मिल जाता है। तो यह शब्द किस जाति का है? आर्य जाति का तो नहीं जान पड़ता। सिलवाँ लेवी कह गए हैं कि संस्कृत भाषा में फूलों, वृक्षों और खेती-बागवानी के अधिकांश शब्द आग्नेय भाषा परिवार के हैं। यह भी वहीं का तो नहीं है? एक जमाना था जब आस्ट्रेलिया और एशिया के महाद्वीप मिले हुए थे, फिर कोई भयंकर प्राकृतिक विस्फोट हुआ और ये दोनों अलग हो गए। उन्नीसवीं शताब्दी के भाषा-विज्ञानी पण्डितों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आस्ट्रेलिया के सुदूर जंगलों में बसी जातियों की भाषा एशिया में बसी हुई कुछ जातियों की भाषा से संबद्ध है। भारत की अनेक जातियाँ वह भाषा बोलती हैं जिनमें संथाल, मुंडा आदि भी शामिल हैं। शुरु-शुरु में इस भाषा का नाम आस्ट्रो-एशियाटिक दिया गया था। दक्षिण-पूर्व या अग्निकोण की भाषा होने के कारण इसे आग्नेय-परिवार भी कहा जाने लगा है। अब हम लोग भारतीय जनता के वर्ग-विशेष को ध्यान में रखकर और पुराने साहित्य का स्मरण करके इसे कोल-परिवार की भाषा कहने लगे हैं। पंडितों ने बताया है कि संस्कृत भाषा के अनेक शब्द, जो अब भारतीय संस्कृति के अविच्छेद्य अंग बन गए हैं, इसी श्रेणी की भाषा के है। कमल, कुड्मल, कंबु, कंबल, तांबूल आदि शब्द ऐसे ही बताए जाते हैं। पेड़-पौधों, खेती के उपकरणों और औज़ारों के नाम भी ऐसे ही हैं। 'कुटज' भी हो तो क्या आश्चर्य? संस्कृत भाषा ने शब्दों के संग्रह में कभी छूत नहीं मानी। न जाने किस-किस नस्ल के कितने शब्द उसमें आकर अपने बन गए हैं। पंडित लोग उसकी छान-बीन करके हैरान होते हैं। संस्कृत सर्वग्रासी भाषा है।

यह जो मेरे सामने कुटज का लहराता पौधा खड़ा है, वह नाम और रूप दोनों में अपनी अपराजेय जीवनी शक्ति की घोषणा कर रहा है। इसीलिए यह इतना आकर्षक है। नाम है कि हज़ारों वर्ष से जीता चला जा रहा है। कितने नाम आए और गए। दुनिया उनको भूल गई, वे दुनिया को भूल गए। मगर कुटज है कि संस्कृत की निरंतर स्फीयमान शब्दराशि में जो जम के बैठा सो बैठा ही है। और रूप की तो बात ही क्या है! बलिहारी है इस मादक शोभा की। चारों ओर कुपित यमराज के दारुण निःश्वास के समान धधकती लू में यह हरा भी है और भरा भी है, दुर्जन के चित्त से भी अधिक कठोर पाषाण की कारा में रुद्ध अज्ञात जलस्रोत से बरबस रस खींचकर सरस बना हुआ है। और मूर्ख के मस्तिष्क से भी अधिक सूने गिरि-कांतार में भी ऐसा मस्त बना है कि ईर्ष्या होती है। कितनी कठिन जीवनी-शक्ति है! प्राण ही प्राण को पुलकित करता है, जीवनी-शक्ति ही जीवनी-शक्ति को

चित्र 14.2

शब्दार्थ

विचारोत्तेजक - विचारों को उभारने वाला उत्तेजित करने वाला
कुलीनता - उच्च कुल वाला
नस्ल - वंश, संतति
अपराजेय - अजेय
पर्वतनंदिनी - पर्वत की पुत्री
कुपित - क्रुद्ध, रुष्ट
दारुण - कठोर, कष्टकारी
दुर्जन - अत्याचारी, पापी, दुष्कर्म करने वाला
पाषाण - पत्थर
कारा काल कोठरी
रुद्ध - रुका हुआ, दबा हुआ, अप्रकट
गिरि-कांतार - पहाड़ और घने जंगल
जीवनी शक्ति - जीने की इच्छा, संघर्ष करने की शक्ति
हिमाच्छादित - बर्फ से ढकी

प्रेरणा देती है। दूर पर्वतराज हिमालय की हिमाच्छादित चोटियाँ हैं, वहीं कहीं भगवान् महादेव समाधि लगा कर बैठे होंगे; नीचे सपाट पथरीली जमीन का मैदान है, कहीं-कहीं पर्वतनंदिनी सरिताएँ, आगे बढ़ने का रास्ता खोज रही होंगी- बीच में यह चटट्टानों की ऊबड़-खाबड़ जटाभूमि है-सूखी, नीरस, कठोर! यहीं आसन मारकर बैठे हैं मेरे चिरपरिचित दोस्त कुटज। एक बार अपने झबरीले मूर्धा को हिलाकर समाधिनिष्ठ महादेव को पुष्पस्तबक का उपहार चढ़ा देते हैं और एक बार नीचे की ओर अपनी पाताल-भेदी जड़ों को दबाकर गिरिनंदिनी सरिताओं को संकेत से बता देते हैं कि रस का स्रोत कहाँ है। जीना चाहते हो? कठोर पाषाण को भेदकर, पाताल की छाती चीरकर अपना भोग्य संग्रह करो, वायुमंडल को चूसकर, झंझा-तूफान को रगड़कर, अपना प्राप्य वसूल लो, आकाश को चूमकर अवकाश की लहरी में झूमकर उल्लास खींच लो। कुटज का यही उपदेश है-

भित्त्वा पाषाणपिठरं छित्त्वा प्राभंजनीं व्यथाम्
पीत्वा पातालपानीयं कुटजश्चुम्बते नभः !

दुरंत जीवन-शक्ति है! कठिन उपदेश है। जीना भी एक कला है। लेकिन कला ही नहीं, तपस्या है। जियो तो प्राण ढाल दो ज़िंदगी में, मन ढाल दो जीवनरस के उपकरणों में! ठीक है। लेकिन क्यों? क्या जीने के लिए जीना ही बड़ी बात है? सारा संसार अपने मतलब के लिए ही तो जी रहा है। याज्ञवल्क्य बहुत बड़े ब्रह्मवादी ऋषि थे। उन्होंने अपनी पत्नी को विचित्र भाव से समझाने की कोशिश की कि सब कुछ स्वार्थ के लिए है। पुत्र के लिए पुत्र प्रिय नहीं होता, पत्नी के लिए पत्नी प्रिया नहीं होती-सब अपने मतलब के लिए प्रिय होते हैं- 'आत्मनस्तु कामाय सर्व प्रियं भवति!' विचित्र नहीं है यह तर्क? संसार में जहाँ कहीं प्रेम है, सब मतलब के लिए। सुना है, पश्चिम के हॉब्स और हेल्वेशियस जैसे विचारकों ने भी ऐसी ही बात कही है। सुनकर हैरानी होती है। दुनिया में त्याग नहीं है, प्रेम नहीं है, परार्थ नहीं है, परमार्थ नहीं है-है केवल प्रचंड स्वार्थ। भीतर की जिजीविषा-जीते रहने की प्रचंड इच्छा-ही अगर बड़ी बात हो तो फिर यह सारी बड़ी-बड़ी बोलियाँ, जिनके बल पर दल बनाए जाते हैं, शत्रुमर्दन का अभिनय किया जाता है, देशोद्धार का नारा लगाया जाता है, साहित्य और कला की महिमा गाई जाती है, झूठ हैं। इसके द्वारा कोई-न-कोई अपना बड़ा स्वार्थ सिद्ध करता है। लेकिन अंतरतर से कोई कह रहा है, ऐसा सोचना गलत ढंग से सोचना है। स्वार्थ से भी बड़ी कोई-न-कोई बात अवश्य है, जिजीविषा से भी प्रचंड कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है। क्या है?

याज्ञवल्क्य ने जो बात धक्कामार ढंग से कह दी थी, वह अंतिम नहीं थी। वे 'आत्मनः' का अर्थ कुछ और बड़ा करना चाहते थे। व्यक्ति का 'आत्मा' केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं है, वह व्यापक है। अपने में सब और सब में आप-इस प्रकार की एक समष्टि-बुद्धि जब तक नहीं आती, तब तक पूर्ण सुख का आनंद भी नहीं मिलता। अपने-आपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड़कर जब तक 'सर्व' के लिए निछावर नहीं कर दिया जाता, तब तक 'स्वार्थ' खंड-सत्य है, वह मोह को बढ़ावा देता है, तृष्णा को उत्पन्न करता है और मनुष्य को दयनीय-कृपण-बना देता है। कार्पण्य दोष से जिसका स्वभाव उपहत हो गया है, उसकी दृष्टि म्लान हो जाती है, वह स्पष्ट नहीं देख पाता। वह स्वार्थ भी नहीं समझ पाता, परमार्थ तो दूर की बात है।

कुटज क्या केवल जी रहा है? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी

शब्दार्थ

मूर्धा	-	सिर, चोटी
समाधिनिष्ठ	-	समाधि लगाए, ध्यानमग्न
पुष्पस्तबक	-	फूलों का गुलदस्ता, गुच्छा
गिरिनंदिनी	-	गिरि (पर्वत) की बेटी
झंझा	-	तेज आँधी
अवकाश	-	शून्य स्थान, शून्य वायुमंडल
परार्थ	-	उपकार की दृष्टि से दूसरों के लिए किया गया कार्य
परमार्थ	-	उत्कृष्ट वस्तु, परोपकार, मोक्ष
जिजीविषा	-	जीने की तीव्र इच्छा
प्रचंड	-	तीव्र
शत्रुमर्दन	-	शत्रु पर विजय पाना
अंतरतर	-	अंतरात्मा, मन
आत्मनः	-	अपने लिए
समष्टि बुद्धि	-	सबका कल्याण करने वाला विवेक
दलित द्राक्षा	-	कुचले हुए अंगूर
तृष्णा	-	प्यास, पाने की इच्छा
दंडनीय	-	दंड दिए जाने योग्य
कृपण	-	कंजूस
म्लान	-	मैली, मलिन
उपहत	-	विकृत, बिगड़ा हुआ
आत्मोन्नति	-	अपनी भौतिक उन्नति

उन्नति के लिए अफ़सरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अवमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता। आत्मोन्नति के हेतु नीलम नहीं धारण करता, अँगूठियों की लड़ी नहीं पहनता, दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाँकता। जीता है और शान से जीता है–काहे वास्ते, किस उद्देश्य से? कोई नहीं जानता। मगर कुछ बड़ी बात है। स्वार्थ के दायरे से बाहर की बात है। भीष्म पितामह की भाँति अवधूत की भाषा में कह रहा है– 'चाहे सुख हो या दुख, प्रिय हो या अप्रिय, जो मिल जाय उसे शान के साथ, हृदय से बिलकुल अपराजित होकर, सोल्लास ग्रहण करो। हार मत मानो!'

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाऽप्रियम्।
प्राप्तं प्राप्तमुपासीत हृदयेनापराजितः।

–शांतिपर्व, 26.1.26

हृदयेनपराजितः! कितना विशाल वह हृदय होगा, जो सुख से, दुःख से, प्रिय से, अप्रिय से विचलित न होता होगा! कुटज को देखकर रोमांच हो आता है। कहाँ से मिली है यह अकुतोभया वृत्ति, अपराजित स्वभाव, अविचल जीवन दृष्टि!

जो समझता है कि वह दूसरों का उपकार कर रहा है, वह अबोध है, जो समझता है कि दूसरे उसका अपकार कर रहे हैं, वह बुद्धिहीन है। कौन किसका उपकार करता है, कौन किसका अपकार कर रहा है? मनुष्य जी रहा है, केवल जी रहा है, अपनी इच्छा से नहीं, इतिहास–विधाता की योजना के अनुसार। किसी को उससे सुख मिल जाये, बहुत अच्छी बात है, नहीं मिल सका, कोई बात नहीं, परंतु उसे अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुँचाने का अभिमान नहीं होना चाहिए। सुख पहुँचाने का अभिमान यदि गलत है तो दुःख पहुँचाने का अभिमान तो नितांत गलत है।

दुःख और सुख तो मन के विकल्प हैं। सुखी वह है जिसका मन वश में है, दुःखी वह है जिसका मन परवश है। परवश होने का अर्थ है खुशामद करना, दाँत निपोरना, चाटुकारिता, हाँ–हजूरी। जिसका मन अपने वश में नहीं है, वही दूसरे के मन का छंदावर्त्तन करता है, अपने को छिपाने के लिए मिथ्या आडंबर रचता है, दूसरों को फँसाने के लिए जाल बिछाता है। कुटज इन सब मिथ्याचारों से मुक्त है। वह वशी है। वह वैरागी है। राजा जनक की तरह संसार में रहकर, संपूर्ण भोगों को भोगकर भी उनसे मुक्त है। जनक की ही भाँति वह घोषणा करता है कि 'मैं स्वार्थ के लिए अपने मन को सदा दूसरे के मन में घुसाता नहीं फिरता, इसलिए मैं मन को जीत सका हूँ, उसे वश में कर सका हूँ'–

नाहमात्मार्थमिच्छामि मनो नित्यं मनोन्तरे।
मनो मे निर्जितं तस्मात् वशे तिष्ठति सर्वदा।।

कुटज अपने मन पर सवारी करता है, मन को अपने पर सवार नहीं होने देता। मनस्वी मित्र, तुम धन्य हो!

शब्दार्थ

अवधूत	–	जिसे दीन–दुनिया से कोई मतलब नहीं
दाँत नहीं निपोरता	–	गिड़गिड़ाता नहीं
अबोध	–	अज्ञानी
अपकार	–	अहित, अत्याचार
उपकार	–	भलाई
नितरांत	–	अवश्य, लगातार
आडंबर	–	दिखावा

बोध प्रश्न 14.1

दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प चुनकर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. लेखक को शिवालिक की पहाड़ियों में क्या दिखाई देता है?

   (क) शिव की जटाएँ (ख) महादेव की मूर्ति

   (ग) ठिगना शानदार वृक्ष (घ) अलकनंदा का स्रोत

2. लेखक ने कुटज के पेड़ को कहा है:

   (क) बेहया (ख) अलमस्त

   (ग) द्वंद्वयुक्त (घ) अजीब

3. निम्नलिखित में से लेखक के विचारानुसार सबसे सही वाक्य चुनिए:

   (क) नाम में कुछ नहीं रखा, रूप ही सब कुछ है।

   (ख) नाम रूप से अधिक महत्वपूर्ण है।

   (ग) पदार्थ सामने हो तो उसका नाम याद रखना जरूरी नहीं।

   (घ) रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज सत्य।

4. लेखक के अनुसार कुटज का कौन-सा नाम पौरुष व्यंजक नहीं है?

   (क) गिरिगौरव (ख) अकुतोभय

   (ग) मदोद्धता (घ) अपराजित

5. 'कुटज' शब्द का अर्थ बताते हुए लेखक किस शब्द को इससे जुड़ा हुआ नहीं मानता?

   (क) कूटना (ख) कुटिया

   (ग) घड़ा (घ) कुटकारिका

14.2 आइए समझें

आप जानते हैं कि निबंध मुख्य रूप से विचार-प्रधान होते हैं। किसी भी घटना, तत्त्व या विचार को लेकर लेखक विस्तार से उस पर अपने विचार रखता है। आप यह भी जानते हैं कि लेख में विषय से बँधकर लिखने की बाध्यता होती है, वह निबंध में नहीं होती। कुटज निबंध को पढ़ते हुए भी आपने इस बात को महसूस किया होगा। किसी भी निबंध के तीन तत्त्व होते हैं। इसे भी हम मुख्यत: तीन अंशों में ही पढ़ेंगे-प्रस्तावना, विषय-वस्तु और उपसंहार। आपने अनुभव किया होगा कि पूरे निबंध का एक-एक वाक्य बहुत महत्वपूर्ण है। आइए, इसके महत्वपूर्ण अंशों को समझने की कोशिश करते हैं।

अंश-1

प्रस्तावना

निबंध का पहला तत्त्व प्रस्तावना या भूमिका है। इसमें लेखक यह स्पष्ट करता है कि आगे पाठ में वह किस विषय पर चर्चा करेगा। प्रस्तुत पाठ आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रकृति वंदना से प्रारंभ करते हैं। वे कहते हैं कि वैसे तो सभी पर्वतों की सुंदरता निराली होती है पर हिमालय का तो कहना ही क्या? ऐसा प्रतीत होता है मानो हिमालय ने अपनी दोनों भुजाएँ फैला रखी हों एक ओर पर्वतश्रृंखलाओं से निकलता अरब सागर और दूसरी ओर बंगाल की खाड़ी का लहलहाता समुद्र। इसके एक ओर रत्नों की खान, और दूसरी ओर लंबी 'शिवालिक' श्रृंखला है। शिवालिक अर्थात् शिव की अलकें या केशराशि। अलकनंदा नामक नदी, जिसे शिव की अलकों से निकलने के कारण ही अलकनंदा नाम मिला, शिवालिक पर्वत-माला से बहुत दूर बहती है। पर शिव तो महान तपस्वी हैं। उनकी सामान्य ऋषि-मुनियों जैसी जटाएँ तो हैं नहीं। उनकी तो बहुत लंबी और घनी जटाएँ हैं। यही कारण है कि वह दूर-दूर तक फैल गई हैं।

अभिप्राय यह है कि शिवालिक पर्वत-माला हिमालय का ही एक अंश है।

ऐसा माना जाता है कि हिमालय पर शंकर-पार्वती सदा निवास करते हैं और शिवशंकर सदैव समाधि लगाए तपस्या में लीन रहते हैं। उन्हें स्वयं की भी सुध नहीं इसीलिए उनकी जटाएँ बढ़ गई हैं, सूखी, नीरस और कठोर हो गई हैं। बिल्कुल इस शिवालिक श्रृंखला की भाँति। हिमालय का पाद देश भी ऐसा ही है। कहीं कोई हरियाली नहीं। दूब तक सूख गई है। चारों ओर फैली हैं-काली-काली चट्टानें और शुष्क रक्ताभ रेती। बस कहीं-कहीं बहुत दूर-दूर दिख जाते हैं तो कुछ सूखे झाड़-झंझाड़। यहाँ की इन्हीं विशेषताओं के कारण इनको शिव के जटाजूट के निचले हिस्से का पर्याय नाम 'शिवालिक' दे दिया गया है। लगता है कि यहाँ बस शिव जैसे अद्वितीय, कठिन, विषम परिस्थितियों को सह सकने वाले देवता ही रह सकते हैं।

पर आश्चर्य की बात तो यह है कि एक ठिगना-सा वृक्ष भी यहाँ इन्हीं जटिल परिस्थितियों में जी रहा है। सिर्फ़ जी ही नहीं रहा वरन् हँस-हँस कर, साहस से चट्टानों को भेद कर अपने लिए जीवन-जल तलाश रहा है तथा हरा-भरा बना रहकर दूसरों को किसी भी परिस्थिति में हार न मानने की प्रेरणा दे रहा है।

जीवन सदा एक जैसा नहीं रहता। कभी-सुख के दिन होते हैं कभी परिस्थितियाँ विपरीत होती हैं और विपत्तियाँ आती हैं। विपत्तियों से घबराना स्वाभाविक है पर मनुष्य वह है जो इनका सामना करे और इस पर विजय पा ले। मनुष्य का गुण ही है हर परिस्थिति में जीने के लिए संघर्ष करना केवल जीने के लिए ही संघर्ष न करना, विषम परिस्थितियों में भी समाज-विरोधी न होना, मनुष्यता से न गिरना। पर बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं जो जल्दी ही थक-हार जाते हैं और समाज को भला-बुरा कहने लगते हैं– ऐसे लोगों को सही तरह से जीने की कला नहीं आती।

सही तरह से जीने की कला क्या है– आइए इसे सीखते हैं। वैसे तो सीखने के अनेक माध्यम हैं, पर दिलचस्प बात यह है कि यहाँ माध्यम है एक ठिगना-सा पेड़-'कुटज'।

अलकनंदा नामक नदी, जिसे शिव की अलकों से निकलने के कारण ही अलकनंदा नाम मिला, शिवालिक पर्वत-माला से बहुत दूर बहती है। पर शिव तो महान तपस्वी हैं। उनकी सामान्य ऋषि-मुनियों जैसी जटाएँ तो हैं नहीं। उनकी तो बहुत लंबी और घनी जटाएँ हैं। यही कारण है कि वह दूर-दूर तक फैल गई हैं।

अभिप्राय यह है कि शिवालिक पर्वत-माला हिमालय का ही एक अंश है। अलकनंदा नामक नदी, जिसे शिव की अलकों से निकलने के कारण ही अलकनंदा नाम मिला, शिवालिक पर्वत-माला से बहुत दूर बहती है। पर शिव तो महान तपस्वी हैं। उनकी सामान्य ऋषि-मुनियों जैसी जटाएँ तो हैं नहीं। उनकी तो बहुत लंबी और घनी जटाएँ हैं। यही कारण है कि वह दूर-दूर तक फैल गई हैं।

शिवालिक की पहाड़ियों में कहीं छाया नहीं, मिट्टी नहीं, खाद नहीं, पानी तक नहीं। पर इस भयंकर गर्मी को सहकर, भूखे-प्यासे रहकर भी जो वृक्ष शान से हरा-भरा बना हुआ जी रहा है। उसकी जिजीविषा (जीने की इच्छा) की प्रशंसा कैसे करें? क्या कहें? इतनी कठिन परिस्थितियों में भी वह रो-रोकर नहीं जी रहा, बल्कि हँसते-हँसते जी रहा है। लेखक सोचता है क्या ये इसकी बेशर्मी नहीं? यह मस्तमौला है क्या? जैसे फकीर होते हैं? तब वह विश्लेषण करता है कि अक्सर जिन लोगों के व्यवहार से बेहयाई झलकती है, वह कफ़ी तत्त्वज्ञानी होते हैं। उन्हें कुछ भी कहिए वे हँसते रहते हैं। इन पर विरोधी बातों का, झूठे आरोपों का, अपशब्दों का कोई असर नहीं होता। इसलिए नहीं कि वे बेशर्म होते हैं वरन् इसलिए कि उन्होंने यह जान लिया है कि विरोधी परिस्थितियों में भी जीवन कैसे हँस-हँस कर जिया जाता है। वे मान-अपमान, ईर्ष्या-द्वेष से काफी ऊपर उठ चुके होते हैं। उनकी ज्ञान की जड़ें बहुत गहरी होती हैं। संभवत: कुटज भी ऐसा ही है। तभी तो वह चारों ओर फैली चट्टानों और रेती से भी, जहाँ जल का नामो-निशान नहीं होता, अपना भोजन कहीं गहरे से खींच लाता है और जीवित बना रहता है। यह तो आप जानते ही हैं कि पानी के बिना पौधों का हरा-भरा बने रहना तो बहुत ही कठिन है।

अंश-2

विषय-वस्तु

इस पाठ में वर्णित निबंध का दूसरा तत्त्व है - विषय-वस्तु। इसके अंतर्गत प्रस्तावना में कही गई बात को आगे बढ़ाया जाता है। लेखक यहाँ मूल विषय के तथ्यों की व्याख्या करता है।

प्रस्तुत पाठ की भूमिका को पढ़कर ही हमें यह आभास होने लगता है कि इसमें अपराजेय जीवनी शक्ति के परिचायक कुटज के माधयम से लेखक हमें कई संदेश देना चाहता है।

विषय-वस्तु में कुटज की इसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए लेखक कहता है कि शिवालिक की पहाड़ियों में उगे छोटे-छोटे वृक्षों के नाम, कुल, वंश, प्रकृति, स्वभाव आदि के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता, पर लगता है कि वे मुझे बरसों से जानते हैं। उनमें से एक वृक्ष ऐसा भी है जो बहुत ठिगना-सा, छोटा-सा है तथा जिसके पत्ते चौड़े और बड़े हैं। फूलों से खूब लदा यह

पेड़ सदा मुस्कराता-सा जान पड़ता है। मानो पूछ रहा हो, ''क्या तुम मुझे नहीं पहचानते?'' लेखक को लगता है कि वह उसे भली-भाँति जानता है। पर उसे उस वृक्ष का नाम याद नहीं आता। तब वह सोच में पड़ जाता है कि क्या किसी का नाम याद रखना ज़रूरी है? किसी पदार्थ का रूप मुख्य है अथवा नाम? नाम तो कुछ भी रखा जा सकता है, नाम याद आए चाहे न आए, पर विश्लेषण करने के बाद लेखक को लगता है कि यह उचित नहीं, क्योंकि नाम समाज के एक व्यक्ति के मानने से नहीं वरन् सबके स्वीकार करने से निर्धारित होता है। वरना एक ही व्यक्ति के सैंकड़ों, हजारों नाम हो जाएँ तब तो एक और बड़ी समस्या खड़ी हो जाएगी। किसी का कोई निश्चित नाम ही नहीं रहेगा। तब लेखक वृक्ष के उस नाम को याद करने का प्रयत्न करता है जिसे समाज ने अपनी स्वीकृति से दिया है। वह व्यक्ति के साथ-साथ तथा बाद में भी हज़ारों वर्षों तक उसे विशेष व्यक्ति का परिचय देता रहता है। इतिहास उसे प्रमाणित करता है। पर रूप पर समाज की मुहर नहीं लगी होती। वह तो किसी भी व्यक्ति का अपना ही होता है।

वास्तव में समाज ही किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के उस नाम को स्वीकृति देता है, जो सदियों तक संबंधित पदार्थ का परिचय देता रहता है। रूप तो ईश्वर की देन है तथा वह व्यक्ति का अपना होता है, पर नाम समाज की देन है। आजकल के अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग इसी सामाजिक स्वीकृति को 'सोशल-सैंक्शन' का नाम देते हैं, जिसका अभिप्राय है- समाज द्वारा प्राप्त स्वीकृति। लेखक भी इस ठिगने से वृक्ष का वह नाम याद करने का प्रयत्न करता है जिसे समाज ने उस वृक्ष विशेष के लिए निर्धारित किया है, जिस नाम से वह सदियों से पुकारा जाता रहा है तथा आज भी जिस नाम से लोग उसे संबोधित करते हैं। अनेक पीढ़ियों से प्रयोग में आने वाले उस नाम को लेखक बार-बार याद करने का प्रयत्न करता है।

चित्र 14.3 : कुटज वृक्ष

ऐसा चिंतन करते-करते अचानक उसे याद आता है कि अरे! इस वृक्ष का नाम तो कुटज है। कुटज जिसकी संस्कृत साहित्य में बार-बार चर्चा होती रही है। निबंधकार मानता है कि इस वृक्ष को कुटज नाम इसीलिए मिला क्योंकि यह गिरिकूट पर उत्पन्न होता है। कालिदास ने इस वृक्ष की चर्चा अपनी काव्य-रचना 'मेघदूत' में भी की है जिसका मुख्य पात्र विरह-पीड़ित यक्ष, अपनी प्रेयसी को संदेश भेजने के लिए रामगिरि पर्वत पर मेघ को चुनता है और उन्हें यही कुटज के फूल भेंट स्वरूप देता है। हो सकता है जब कालिदास यक्ष के माध्यम से उसकी विरह-व्यथा वर्णित कर रहे थे तब उन्हें कुटज के वृक्ष भी अपने समान व्यथित, पीड़ित नज़र आए हों। इसी कारण उन्होंने सुगंधित, सुंदर चंपा, चमेली, कमल आदि फूलों को छोड़कर 'कुटज' के फूलों को ही मेघ की अर्चना- वंदना के लिए चुना हो। सचमुच कुटज

सौभाग्यशाली है। द्विवेदी जी की भी यही इच्छा है कि वह भी शिवालिक पर्वतशृंखला पर घिरे हुए मेघों की वंदना इन्हीं फूलों से करें।

क्रियाकलाप 14.1

आप कभी-कभी यह कल्पना अवश्य करते होंगे कि समुद्र, नदी, पर्वत, पक्षी या आकाश जीने की कला के विषय में कोई-न-कोई संदेश अवश्य देते हैं। इनमें से किसी एक के द्वारा दिए गए उस संदेश को संक्षेप में लिखिए।

पाठगत प्रश्न 14.1

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. 'शिवालिक' का अर्थ किया गया है-

   (क) शिव का त्रिनेत्र
   (ख) शिव की केशराशि
   (ग) शिव की दृढ़ता
   (घ) शिव की साधना

2. विपरीत परिस्थितियों में भी कुटज हरा-भरा बना रहता है, क्योंकि-

   (क) वह सदैव हँसता रहता है।
   (ख) उसके भीतर जिजीविषा है।
   (ग) उस पर किसी बात का प्रभाव नहीं पड़ता।
   (घ) उसकी जड़ें बहुत गहरी हैं।

3. कुटज सौभाग्यशाली है, क्योंकि-

   (क) कालिदास ने इसे अपनाया
   (ख) संस्कृत साहित्य में इसका उल्लेख है
   (ग) यह गिरिकूट पर उत्पन्न होता है
   (घ) फूलों से खूब लदा हुआ है

4. नाम को किसकी स्वीकृति प्राप्त होती है-

   (क) लेखक की
   (ख) व्यक्ति की
   (ग) ईश्वर की
   (घ) समाज की

अंश-3

अब आइए 'कुटज' के बारे में कुछ और जानें:

लेखक मानता है कि कालिदास के काम आने वाले कुटज का जितना सम्मान होना चाहिए था, उतना हुआ नहीं, इसलिए नहीं कि वह इज्जत के काबिल नहीं था, बल्कि इसलिए कि

इज्जत मिलना, न मिलना अपने-अपने भाग्य की बात है। कविवर रहीम को याद करते हुए लेखक कहता है कि रहीम भी अपने समय में बहुत आदरणीय व्यक्ति थे। सम्राट अकबर ने उन्हें नौरत्नों में स्थान दिया था पर इस स्वार्थी दुनिया ने उनका मोल नहीं जाना। बाद में जहाँगीर ने उनसे अपना काम निकलवा कर उनकी इतनी उपेक्षा कर दी जैसे कोई आम का रस चूसकर उसकी गुठली और छिलका फेंक देता है। पर सच्चाई यह है कि इससे उनका मूल्य कम नहीं हो जाता। यह गुठली ही कभी-कभी पेड़ का रूप धारण करके हमें हजारों वैसे ही रसदार फल लौटा देती है। पर दुनिया को उनके अथवा किसी के भी मूल्य की परख कहाँ? इसी कारण तो वह कुटज का मोल भी नहीं आँक सकी।

दुनिया से इस प्रकार का स्वार्थी और निर्मम व्यवहार पाकर रहीम की मन:स्थिति भी बिगड़ गई। तभी शायद उन्होंने कुटज की उपेक्षा करते हुए यह दोहा लिख डाला-

वे रहीम अब बिरछ कहँ, जिनकर छाँह गंभीर।
बागन बिच-बिच देखियत, सेंहुड़, कुटज, करीर।।

रहीम का यह कहना सत्य है कि कुटज छाँह नहीं दे सकता। पर क्या उसमें अन्य कोई गुण नहीं? उसके वे सुंदर मनोहारी फूल, क्या उनका मूल्य कुछ भी नहीं? लेखक तर्क करके यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ऐसा नहीं है कि रहीम कुटज के गुण न जानते हों। वह जानते थे पर फिर भी उन्होंने कुटज के प्रति ऐसा उपेक्षित व्यवहार किया। उसका मुख्य कारण यही था कि वह स्वयं उपेक्षा के शिकार थे इसीलिए खराब 'मूड' में वह ऐसी गलतबयानी कर बैठे।

आगे 'कुटज' शब्द की व्युत्पत्ति की चर्चा करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं कि कुटज का अभिप्राय है-जो कुट से उपजा, उत्पन्न हुआ हो। कुट 'घर' को भी कहते हैं तथा घड़े को भी। पर कुटज न तो घर में उगता है, न ही घड़े अथवा गमले में। प्रतापी अगस्त्य मुनि को भी 'कुटज' कहा जाता है। सोचो तो भला, क्यों? क्या वह घड़े से उत्पन्न हुए थे? लेखक को लगता है कि हम 'कुटज' को बहुत ही सीमित अर्थों में देख रहे हैं। बात कुछ और है। संस्कृत में 'कुटहारिका' तथा 'कुटकारिका' दासी को कहा जाता है। अत: मुनि अगस्त्य, शायद दासी से उत्पन्न हुए होंगे, दासी पुत्र होंगे। वह बार-बार सोचते हैं कि आखिर यह शब्द आया कहाँ से? आर्य भाषा से या किसी और से। उन्हें संदेह होता है कि ये आर्य भाषा का शब्द है। तब पाश्चात्य फ्रांसीसी विद्वान सिलवाँ लेवी का कथन उन्हें याद आता है कि "संस्कृत भाषा में फूलों, वृक्षों और खेती-बागवानी के अधिकांश शब्द आग्नेय भाषा-परिवार के हैं।" इसलिए संभवत: कुटज भी इसी भाषा-परिवार का है।

एक समय आस्ट्रेलिया तथा एशिया महाद्वीप मिले हुए थे, पर बाद में कोई भयंकर प्राकृतिक विस्फोट हुआ तथा दोनों महाद्वीप अलग-अलग हो गए। बहुत बाद में, लगभग उन्नीसवीं शताब्दी के आस-पास भाषा वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर गया कि एशिया में बसी कुछ जातियों की भाषा, आस्ट्रेलिया में बसी जातियों की भाषा से काफी मिलती-जुलती है। भारत की संथाल, मुंडा आदि जातियों की भाषा भी कुछ-कुछ वैसी ही है। इस कारण यह कहा जाता

है कि यह आग्नेय भाषा-परिवार का ही एक शब्द है। अब हम इसे कोल-परिवार की भाषा भी कह सकते हैं। संस्कृत में अनेक शब्द यहीं से लिए गए हैं।

पाठगत प्रश्न 14.2

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर दिए निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. रहीम कुटज की कद्र नहीं कर पाए, क्योंकि
   (क) उन्हें कुटज पसंद नहीं था।
   (ख) कुटज के फूल सुंदर नहीं थे।
   (ग) वह स्वयं समाज के उपेक्षित व्यवहार से दुखी थे।
   (घ) उनके विचार से कुटज तो मात्र एक बौना-सा पेड़ है।

2. ''लेकिन दुनिया है कि मतलब से मतलब है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है'' वाक्य में दुनिया की कैसी मनोवृत्ति अभिव्यक्त हुई है-
   (क) मूल्य पहचानने वाली
   (ख) उपेक्षा करने वाली
   (ग) सम्मान देने वाली
   (घ) स्वार्थ पूरा करने वाली

3. 'कुट' कहते हैं-
   (क) घड़े और गमले को
   (ख) घड़े और पुत्र को
   (ग) घड़े और दासी को
   (घ) घड़े और घर को

अंश-4

आइए, आगे देखें कि लेखक को कुटज में आखिर ऐसा क्या विशेष दिखा, जो उन्होंने उसके ऊपर पूरा एक निबंध ही लिख डाला!

निबंधकार कहता है कि वह कुटज पर इसलिए बलिहारी है, क्योंकि कुटज नाम और रूप दोनों ही दृष्टियों से अपराजेय है, कभी हार नहीं मानने वाला है। यह गुण उसके सौंदर्य में चार चाँद लगा देता है। उसका नाम हज़ारों वर्षों से कुटज ही है, बदला नहीं। जबकि इस बीच अनेक पेड़-पौधों, वस्तुओं के नाम बदल गए। कितने नाम लुप्त हो गए। उनको दुनिया भूल भी गई। पर कुटज का नाम ज्यों-का-त्यों है। वह संस्कृत की विशाल शब्दराशि में आज भी अपना अधिकार जमाकर बैठा है। अन्य अनेक हिंदी शब्दों की तरह उसने हिंदी भाषा में आकर अपना मूल रूप नहीं बदला। उसका रूप-सौंदर्य भी अद्वितीय, आकर्षक और मनोहारी है। परंतु सर्वाधिक सराहनीय तो उसकी जिजीविषा (जीने की प्रचंड इच्छा) है। चारों ओर तीव्र झुलसाती धूप तथा धधकती लू के तेज़ झोंके, दूर-दूर तक फैला नि:शब्द सन्नाटा और नीचे न प्राणदायी मिट्टी, न खाद, न पानी। बस गर्मी से जलती, तपती चट्टानें हैं, जहाँ प्राणों को पुलकित करने वाली, जीवन को रसमय बनाने वाली कोई परिस्थितियाँ नहीं है। पर कुटज है कि फिर भी जिए

जा रहा है। मजबूरी में नहीं जी रहा है, और न ही जीवन को बोझ मानकर जी रहा है। वरन् वह तो प्रसन्नतापूर्वक, हँस-हँस कर जी रहा है। विषम परिस्थितियों से घबराकर वह निरुत्साहित नहीं हुआ, उदास, अकर्मण्य नहीं हुआ। वरन् उसने तो निरंतर संघर्ष किया तथा अंतत: जीवन के कुरुक्षेत्र से विजयी होकर निकला। उसने सदैव यह संदेश दिया कि कैसी भी कठिन परिस्थितियाँ क्यों न आ जाएँ। कभी भी हार मत मानिए। जीवन को सही प्रकार से जीना न छोड़िए। सहिष्णु, दृढ़ और साहसी बनिए तो सफलता और विजय आपके कदम चूमेगी।

कुटज सूखी, नीरस और कठोर धरती से, बहुत संघर्षों के बाद अपने लिए जीवन-रस तलाश कर पाता है। परंतु फिर भी वह कंजूस और स्वार्थी नहीं, सहिष्णु है। सब कुछ वह स्वयं ही नहीं ले लेना चाहता। वह तो औरों को भी संकेत देता है कि रस का स्रोत कहाँ है। वह महादेव को भी उनके समाधि स्थल में अपने जीने, पनपने के लिए स्थान देने पर फूलों की भेंट चढ़ा-चढ़ाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। वह कहता है कि यदि आप जीना चाहते हैं तो चाहे आपके सामने विपदाओं के पहाड़ आ पड़ें या दुख के सागर लहराने लगें अथवा भयंकर आँधी-तूफ़ान आपको चारों ओर से घेर लें पर सबसे जूझकर भी आप अपना वह 'प्राप्य' प्राप्त कीजिए जो सिर्फ़ आपके लिए है, जिसे विधाता ने सिर्फ आपके भाग्य में लिखा है। आप कर्मशील और परिश्रमी बनकर उसे प्राप्त कीजिए तथा दुख की राहों से भी हर्षोल्लास का क्षण चुन लीजिए, संघर्ष का सामना कीजिए तथा देखिए कि विजय किस तरह आपकी हो जाती है।

कुटज का यही संदेश है कि जीना भी एक कला है। सिर्फ कला ही नहीं, तपस्या है जिसमें अनेक विघ्न-बाधाएँ आती ही रहती हैं, पर फिर भी हमें हार नहीं माननी है, अपना अस्तित्व बचाए रखना है। जीना है और आत्मनिर्भर बनकर जीना है और आत्मविश्वास के साथ जीना है। पर मन में एक प्रश्न उठता है कि इतने कष्ट सहकर, विपदाओं से लड़-लड़कर भी आखिर जीना है तो क्यों?

क्या मात्र जीने के लिए जीना चाहिए? मौत हमारे हाथ में नहीं है, क्या यही तथ्य सिर्फ़ हमारे जीने का कारण है? क्या महज अपने लिए स्वार्थी बनकर जीते रहना उचित है? हम सोचते हैं तो लगता है कि इस स्वार्थी दुनिया में सब अपने लिए ही जी रहे हैं। शायद इसीलिए ब्रह्मवादी महान तत्त्ववेता ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपनी पत्नी को समझाने की कोशिश की थी कि दुनिया में जो भी होता है और हो रहा है, यह सब व्यक्ति के अपने स्वार्थ के लिए है। किसी को अपनी पत्नी, पुत्र, बहन, भाई, या अन्य संबंधी इसलिए प्रिय नहीं होते कि उनका उनसे एक रिश्ता जुड़ा हुआ होता है, बल्कि वे सब तो उसे इसलिए प्रिय होते हैं कि वह कभी-न-कभी, किसी-न-किसी प्रकार से उसकी सहायता करते हैं, उसे लाभ पहुँचाते हैं।

क्या यह सोचकर दुख नहीं होता? यानी कि संसार में जो कुछ भी है सब महज अपने स्वार्थ के लिए है? यदि ऐसा ही है तो क्या करना है इस स्वार्थी दुनिया में जीकर? जीवन से भला ऐसा क्या मोह? पश्चिम के हॉब्स और हेल्वेशियस जैसे कुछ विचारक भी ऐसा ही मानते हैं। पर आश्चर्य होता है, ऐसे विचार जानकर! क्या दुनिया में त्याग, प्रेम, ममता, परार्थ, परमार्थ कुछ नहीं है? क्या संसार सिर्फ़ प्रचंड स्वार्थ के बल-बूते पर जी रहा है? यदि सिर्फ़ जीना उसके

कर्म करने का कारण है तो फिर परहित, लोकमंगल, मानव-कल्याण आदि बड़ी-बड़ी बातें झूठ हैं। सब बकवास हैं।

लेखक का मानना है कि यदि ऐसा होता तो प्रजाहित अथवा जनता के कल्याण की बातें कहकर कुछ व्यक्ति अलग-अलग राजनीतिक दल नहीं बना लेते। रावण और कंस पर राम तथा कृष्ण की विजय का प्रतिवर्ष अभिनय नहीं किया जाता। देशोद्धार के नारे नहीं लगाए जाते तथा साहित्य की अमर कृतियों, धर्मग्रंथों और विभिन्न कलाओं द्वारा परोपकार, आत्मोत्सर्ग, बलिदान, त्याग की महिमा नहीं गाई जाती। पाप पर पुण्य की, असत्य पर सत्य की, अनीति पर नीति की विजय बार-बार दिखाने का आखिर क्या कारण है?

याज्ञवल्क्य ऋषि की बात पूर्णत: असत्य तो नहीं है पर हाँ, वेद अर्धसत्य अवश्य है। उसे अंतिम सत्य मान लेना गलत है। वास्तव में उनके द्वारा प्रयुक्त 'आत्मन:' शब्द का अर्थ 'केवल अपने लिए' मान लेना, इस शब्द का अर्थ संकुचित करना है। 'आत्मन:' का अर्थ बहुत व्यापक है जिसमें संपूर्ण समाज का, पूरी मानव-जाति का हित समाया हुआ है क्योंकि आत्मा, परमात्मा का एक अंश है तथा वह सभी में विद्यमान है। अत: ब्रह्मवादी याज्ञवल्क्य के 'आत्मन:' शब्द का सही अर्थ जानकर, सबके हित और कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

अपने में सबको और सबमें अपने आपको देखकर व्यक्ति जब कोई कार्य करता है, तभी उसे पूर्ण सुख और संपूर्ण आनंद की प्राप्ति होती है, क्योंकि तब वह सबके हित में ही अपना हित देखने लगता है तथा स्वार्थ और संकीर्णताओं से ऊपर उठ कर परहित, परोपकार की ओर अग्रसर होता है। उस समय सबके कल्याण के लिए वह स्वयं का बलिदान करने से भी पीछे नहीं हटता। अपने को वह उसी प्रकार गलाकर, नष्ट कर दूसरों की प्रसन्नता का साधन बनाता है जिस प्रकार अंगूर स्वयं को मिटाकर आनंद कराते हैं जो कुछ क्षणों के लिए ही सही, मानव को सारे दुखों से दूर कर देता है।

अंश-5

आइए, पिछले पृष्ठ पर कही गई बात को आगे बढ़ाते हैं-

क्या आपको कभी किसी ऐसे स्वार्थ ने घेरा है कि आपने दूसरे की भावनाओं की परवाह ही न की हो? क्या आप अपनी उस गलती के लिए बाद में पछताए नहीं? तब आपने क्या किया, पश्चाताप? उस गलती को दोबारा न दोहराने की प्रतिज्ञा? बहुत अच्छे। ऐसा ही होना चाहिए।

आगे देखें कुटज की और कौन-कौन-सी विशेषता लेखक बता रहा है? क्या हमारे में इनमें से कोई विशेषता है या नहीं? अपने गुणों पर भी ध्यान दीजिए और अपने में कम से कम पाँच गुणों की सूची बनाकर देखिए।

लेखक के मन में प्रश्न उठता है कि कुटज क्या केवल जी रहा है? उसे जीना है मात्र इसीलिए जी रहा है अथवा वह दूसरों को कुछ संदेश भी दे रहा है, परमार्थ भी सोच रहा है? लगता

है कि कुटज का संपूर्ण जीवन सोद्देश्य है। वह पग-पग पर हमें जीवन का आदर्श सिखाता चलता है। वह अपने जीवन का उदाहरण हमारे सामने रखकर हमें सिखाता है कि आत्मनिर्भर बनिए, भीख मत माँगिए, किसी पर आश्रित मत रहिए। ईश्वर के अतिरिक्त किसी से मत डरिए। नीति और धर्म के उपदेश मात्र मत दीजिए। उन्हें अपने व्यवहार से दर्शा इस उन्नति के लिए कर्म कीजिए, कर्मशील बनिए, किसी की चापलूसी मत कीजिए। दूसरों को अपमानित करने, दुख पहुँचाने के लिए ही सिर्फ ग्रहों की पूजा-अर्चना कर उनकी खुशामद मत कीजिए। अपना भाग्य बदलने के लिए विभिन्न रत्न धारण करने पर श्रद्धा मत रखिए, कर्मठ और धैर्यवान बनिए। लेखक का कहना है कि छल-कपट छोड़ दो, हीन भावना से ग्रसित न हो, चाटुकार मत बनो। संयमी, विवेकवान, उदात्त, संघर्षशील और स्वाभिमानी बनो।

यहाँ द्विवेदी जी ने कुटज की जीवन-शैली के माध्यम से वर्तमान जीवन की कुत्सा, स्वार्थपरता, चाटुकारिता, भ्रष्टाचार, लोभ, लिप्सा, मोह, आसक्ति, प्रपंचों से भरी राजनीति, अंधविश्वासों, लोक-कल्याण के नाम पर हो रहे छल-कपट, असत्य, आडंबर आदि पर करारी चोट की है तथा व्यंग्यात्मक तरीके से मानव-मूल्यों के ह्रास पर चिंता व्यक्त की है। आपको भी ऐसा लगता है न!

पाठगत प्रश्न 14.3

सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प चुनकर निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

1. 'जिजीविषा' शब्द में है-
   - (क) अद्वितीय होने की इच्छा
   - (ख) जीने की दुर्दम इच्छा
   - (ग) विवशता का भाव
   - (घ) पराजित होने का भाव
2. कुटज है-
   - (क) सहिष्णु
   - (ख) नीरस
   - (ग) कोयल
   - (घ) उदास
3. लेखक किस बात का खंडन करता है-
   - (क) जीना एक कला और तपस्या है।
   - (ख) याज्ञवल्क्य की बात को गलत मानने का।
   - (ग) अबोध, बुद्धिहीन
   - (घ) त्याग, ममता, परमार्थ जैसे भावों को सत्य मानने का।
4. भाषा-विचार के संदर्भ में किसका उल्लेख है-
   - (क) सिलवाँ लेवी
   - (ख) हेल्वेशियस
   - (ग) हॉब्स
   - (घ) याज्ञवल्क्य

अंश-6

उपसंहार

निबंध का तीसरा मुख्य तत्त्व है-उपसंहार। इसमें लेखक निबंध की विषयवस्तु को उदाहरणों के साथ स्पष्ट करने के उपरांत वह तथ्य अथवा निष्कर्ष पाठकों के समक्ष रखते हैं, जो उनकी दृष्टि में सारे निबंध का निचोड़ है।

जरा देखें तो प्रस्तुत निबंध का उपसंहार लेखक ने किस प्रकार किया है।

लेखक का विचार है कि सच्चा जीवन-दर्शन यही है कि व्यक्ति कर्म करता रहे तथा यथासंभव अच्छे कर्म करने का प्रयास करे। यदि ऐसा करने से किसी अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का भला होता है तो उसे स्वयं पर अहंकार नहीं होना चाहिए कि वह भाग्यविधाता, पुण्यात्मा है। इसके विपरीत यदि वह सत्कर्म नहीं कर पाता तथा दूसरों को कष्ट अथवा दुख पहुँचा कर सोचता है कि वह सर्वशक्तिशाली, सर्वशक्तिमान है तो वह भी उसकी अल्पबुद्धि का प्रमाण है, क्योंकि संसार में कोई भी प्राणी किसी का अपकार अथवा उपकार तब तक नहीं कर सकता जब तक ईश्वर न चाहे। हमारे अच्छे-बुरे कर्मों का संचालक, भाग्यविधाता, कर्ता तो वस्तुतः वही एक ईश्वर है। हम तो मात्र उसकी इच्छानुसार कर्म कर रहे हैं। हमारे कर्मों से किसी का भला हो जाए तो बहुत अच्छी बात है पर यदि ऐसा न हो पाए तब भी कोई दुख नहीं। हमें कर्म तो करते ही रहना चाहिए। पर विचारणीय तथ्य है कि हमें कभी भी गर्व नहीं करना चाहिए। सुख पहुँचाने का गर्व यदि गलत है तो दुख पहुँचाने का गर्व तो बिल्कुल ही हमारी विकृत भाव-वृत्ति का बोधक है।

द्विवेदी जी हमें जीवन-दर्शन समझाते हुए बताते हैं कि वस्तुतः सुख और दुख तो व्यक्ति के मन के अनुरूप होते हैं। कोई भी सुख सबके लिए सुख का कारण नहीं हो सकता तथा कोई भी दुख सबको दुखी नहीं कर सकता। जो एक व्यक्ति के लिए ''सुखदायक'' परिस्थिति है वही दूसरे के लिए ''दुख'' का कारण भी हो सकती है। यदि किसी का मन कमजोर, अस्थिर या चंचल है, अपने वश में नहीं है तो बाह्य जीवन की परिस्थितियों से वह बहुत जल्दी प्रभावित हो जाता है, सुखी अथवा दुखी हो जाता है। उसकी इंद्रियाँ उसके नियंत्रण में नहीं रहतीं और वह सदैव असंतुष्ट रहता है। निष्कर्ष रूप में वह अपनी क्षुद्र स्वार्थ भावना को लेकर कभी किसी की खुशामद करता है तो कभी दाँत निपोर कर किसी की जी हजूरी करता है। उसका आत्म-सम्मान, आत्म-गौरव, आत्म-विश्वास सब समाप्त हो जाता है तथा वह अपनी कमजोरियों को छिपाने के लिए झूठी शान दिखाता है, दूसरों को अपने समान स्तर पर लाने, हानि पहुँचाने के लिए कुटिल चालों के जाल बिछाता है तथा दूसरों के इशारों पर नाचता है। इस प्रकार वह निरंतर पतन के मार्ग की ओर अग्रसर होता चला जाता है।

कुटज ऐसा नहीं करता। वह छल-कपट, राग-द्वेष, मिथ्याचार, षड्यंत्र, असत्य सबसे दूर है, स्वाधीन है। उसका मन अपने वश में है इसलिए वह कामनाओं से मुक्त आनंदमयी वैरागी है-बिल्कुल राजा जनक की भाँति। राजा जनक भी संपूर्ण भोगों का भोग करते हुए सदैव उनसे दूर रहे, इस तथ्य से अवगत रहे कि ये सब मिथ्या मोह है। कुटज भी इसी तरह जीते हुए मानो घोषणा करता है कि वह अपने संकीर्ण स्वार्थ के लिए कभी पथ-भ्रष्ट नहीं होता, दूसरे

के मन को टटोलता नहीं फिरता। अपनी इच्छाओं में भटक नहीं जाता। वह तो इनसे परे निरासक्त, निर्लिप्त है। उसने अपने मन को वश में कर लिया है, उसे जीत लिया है और अब कभी उसका मन, उस पर हावी हो उसे पराभूत नहीं कर सकेगा।

पाठगत प्रश्न 14.4

लेखक के अनुसार निम्नलिखित में से **गलत विकल्प** का चुनाव कीजिए-

1. निम्नलिखित में से मुहावरा नहीं है–

   (क) जूते चाटना (ख) दाँत निपोरना

   (ग) बगलें झाँकना (घ) नीलम धारण करना

2. कुटज

   (क) मिथ्याचारों से युक्त है। (ख) भोगों में लिप्त है।

   (ग) अपने दिल पर सवारी करता है। (घ) घड़े से पैदा हुआ है।

3. लेखक कुटज को देखकर रोमांचित होता है, क्योंकि वह–

   (क) अवधूत है (ख) केवल जी रहा है

   (ग) विचलित नहीं होता (घ) विशाल हृदय है

4. 'कुटज अपने मन पर सवारी करता है, मन को अपने पर सवार नहीं होने देता' कथन का संदेश है-

   (क) आप भी अपने मन के अनुसार कार्य करें।

   (ख) स्वार्थ सिद्धि के लिए जीवन में किसी भी प्रकार की चुनौती स्वीकार करें।

   (ग) मन तो चंचल है पर उसका कहना कभी नहीं टालें।

   (घ) स्वयं पर नियंत्रण रखें, मन को वश में करके उस पर जीत हासिल करें।

14.4 भाषा-शैली

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिक युग के गद्यकार हैं अत: उनकी भाषा सहज स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त होती है। उनकी भाषा में बोलचाल के शब्दों की प्रधानता रही है और इसी के माध्यम से वे गंभीर तथ्यों को सरलता से प्रस्तुती करते चलते हैं। *'कुटज' में स्थान-स्थान पर इस प्रकार की भाषा मिलती है, जैसे- ''कुटज क्या केवल जी रहा है? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता।''*

द्विवेदी जी प्रचलित भाषा की शब्दावली के प्रयोग के पक्षधर हैं, परंतु संस्कृत के तत्सम् शब्दों को भी स्वीकार करते हैं। उनका कहना है, *''प्रचलित शब्दों को विदेशी कह कर त्याग देना*

मूर्खता है पर किसी भाषा के शब्दों का प्रचलन देखकर अपनी हजारों वर्ष की परंपरा की उपेक्षा करना आत्मघात है। संस्कृत ने भिन्न-भिन्न भाषाओं के हजारों शब्द लिए हैं, पर उन्हें संस्कृत बनाकर।''

उन्हें अंग्रेज़ी के प्रचलित शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करने में भी कोई झिझक नहीं है। यदि प्रवाह बनता हो तो सरलता से किसी भी भाषा को अपना लेते हैं।

''नाम में क्या रखा है-ह्वाटस देयर इन ए नेम्'' (''जिसे सोशल-सैक्शन कहा जाता है।'', ''मगर कभी-कभी कवियों का 'मूड' खराब हो जाया करता है।'' उन्होंने 'कुटज' में भी कहा है, *''संस्कृत भाषा ने शब्दों के संग्रह में कभी छूत नहीं मानी। न जाने किस-किस नस्ल के कितने शब्द उसमें आकर अपने बन गए।''*

द्विवेदी जी ने कई जगह संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है तो कहीं अरबी-फ़ारसी की शब्दावली भी अपनाई है, जैसे– उल्लास-लोल, चारुस्मित कुटज, नीलोत्पल, अर्घ्य, अनत्युच्च पर्वतश्रृंखला (संस्कृत की तत्सम शब्दावली) तथा इज्जत, कद्रदान, गलतबयानी, अदना-सा, (अरबी-फारसी शब्दावली)।

द्विवेदी जी ने निबंध में सूक्तियों, मुहावरों, लोकोक्तियों और सूत्र वाक्यों का भी खुलकर प्रयोग किया है। इसके कारण उनकी अभिव्यक्ति में गहनता, लोकप्रियता, सरसता और मनोरंजकता आ जाती है और वे अपने विचारों को समर्थन देते हुए पुष्ट करते चलते हैं।

सूक्ति

''आत्मनस्तु कामाय सर्वप्रियं भवति'', ''दुरंत जीवनी शक्ति है'', ''कठिन उपदेश है।'', ''जीना भी एक कला है।'' ''दुख और सुख तो मन के विकल्प हैं।'' *''सुखी वह है जिसका मन वश में है। दुखी वह है जिसका मन परवश में है।'', ''रूप व्यक्ति-सत्य है, नाम समाज-सत्य है''* आदि।

मुहावरे

दाँत निपोरना, जी हजूरी, खुशामद करना, जाल बिछाना आदि का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है। आचार्य जी मुख्यतः तत्सम शब्द प्रधान, परिमार्जित भाषा का प्रयोग करते हैं और सूत्र वाक्यों का अभिव्यंजनात्मक प्रयोग कर भाषा को सुंदर रूप प्रदान करते हैं। लेखक ने विभिन्न विषयों पर निबंध रचना की है और आवश्यकतानुसार अनेक शैलियों में निबंध लिखे हैं।

'कुटज' नामक निबंध में आचार्य जी ने **गवेषणात्मक शैली** का प्रयोग किया है, जैसे – *''संस्कृत में 'कुटज' रूप भी मिलता है और कुटच भी। मिलने को तो कुटज भी मिल जाता है। तो यह शब्द किस जाति का है।'', ''संस्कृत में कुटिया या कुटीर शब्द भी कदाचित् इसी*

शब्द से संबंधित हैं। क्या इस शब्द का अर्थ घर ही है, 'घर में काम-काज करने वाली' दासी 'कुटकारिका' और 'कुटहारिका' कही ही जा सकती है।''

परंतु इसके अतिरिक्त कुटज में अन्य शैलियों का भी प्रयोग किया गया है-

लालित्यमय विवेचनात्मक भाषा शैली

'नाम इसलिए बड़ा नहीं... चित्त गंगा में स्नात!'

विश्लेषणात्मक भावनापूर्ण शैली

''रूप मुख्य है या नाम? नाम बड़ा है या रूप? पद पहले है या पदार्थ? पदार्थ सामने है पद नहीं सूझ रहा है। मन व्याकुल हो गया।''

भावनात्मक और विवेचनात्मक

''दुरंत जीवनी शक्ति... विचित्र नहीं है यह तर्क?''

इसी प्रकार कहीं प्रतीकात्मक तो कहीं आलंकारिक शैली के भी दर्शन होते हैं। द्विवेदी जी की कृतियों में चिंतन-मनन और अनुशीलन के बिंब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

पाठ में आए शब्दों के अर्थ समझ कर उसी आधार पर आप अन्य शब्दों का भी निर्माण कर सकते हैं आपको इससे कई लाभ होंगे। जहाँ उस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ समझने में सहायता मिलेगी, वहीं उसी नमूने के आधार पर आप नए शब्दों को स्वयं बना सकते हैं, जैसे–

पहाड़फोड़ - पहाड़ (को) फोड़कर आने वाला

पातालभेद - पाताल (को) भेदकर

इसी नमूने पर आप अन्य शब्द बना सकते हैं, जैसे-

'आकाशभेद' - उससे ही बनेगा **'आकाशभेदी'**

'ध्वनि भेद - उससे ही विशेषण रूप प्रयोग 'ध्वनिभेदी बाण'

इसी प्रकार अन्य नमूनों के शब्द ले सकते हैं:

नमूना	**अन्य शब्द निर्माण**
समाधिस्थ - समाधि (में) लगे हुए	**समीपस्थ** - समीप में
	निकटस्थ - निकट में
	दूरस्थ - दूर में (दूर रहने वाला)
कद्रदान - कद्र देने वाला	**पानदान** - पान रखने का पात्र
	कलमदान - कलम रखने का पात्र

टिप्पणी : **'दान'** का अर्थ कुछ बदल गया है। यह भी याद रखें कि यह 'दान' फ़ारसी से ले लिया गया है। जबकि संस्कृत का 'दान' शब्द बिल्कुल अलग है, जिससे कई शब्द बनते हैं:

दानी	– दान देने वाला	**दानवीर**	– वह व्यक्ति जिसने दान देने में प्रसिद्धि पाई है।
प्रतिनिधित्व	– किसी के स्थान पर अथवा किसी के लिए काम करने वाले व्यक्ति का भाव	**देवत्व**	– देवता का भाव
		स्वत्व	– स्व (अपनेपन) का भाव
शब्दराशि	– शब्दों का ढेर, अनेक प्रकार के शब्दों का ठीक-ठीक प्रयोग शब्दावली	**धनराशि**	– धन का ढेर, अधिक धन
		जमाराशि	– जमा किया हुआ धन

इसी प्रकार अन्य शब्द छाँटिए और उनका ठीक-ठीक अर्थ समझिए, साथ ही उसी नमूने के शब्द भी बनाइए। अगर अर्थ समझ में न आए तो कोश में देखकर समझिए। कोश कैसे देखें यह भी आपको बताया जा रहा है।

पाठगत प्रश्न 14.5

1. 'कुटज' के अंतिम गद्यांश "दुख और सुख ....उनसे मुक्त है" में जिस शैली का प्रयोग हुआ है, वह है–

   (क) विश्लेषणात्मक (ख) विवेचनात्मक

   (ग) भावात्मक (घ) प्रतीकात्मक

2. भाषा के प्रति लेखक का दृष्टिकोण है–

   (क) समावेशी (ख) मनोरंजक

   (ग) शुद्धतावादी (घ) तत्समाग्रही

14.5 आपने क्या सीखा

1. "कुटज" शिवालिक की नीरस और कठोर चट्टानों में उगने वाले एक ठिगने से वृक्ष का नाम है।
2. 'शिवालिक' का अर्थ शिवा की अलकें अथवा शिव के जटाजूट का निचला हिस्सा है।

3. पद अथवा पदार्थ में पद का महत्त्व पदार्थ से कम नहीं होता, क्योंकि वह सामाजिक स्वीकृति से निर्धारित होता है।

4. कुटज को उसकी अनेकानेक विशेषताओं के आधार पर अनेक नाम दिए जा सकते हैं, जैसे–वनप्रभा, गिरिकांता, गिरिकूट बिहारी।

5. संस्कृत साहित्य में, विशेषकर कालिदास के साहित्य में कुटज को विशेष सम्मान दिया गया है।

6. कभी-कभी रहीम जैसे साहित्यकार भी गलत बयानी के शिकार होकर, कुटज सरीखे वृक्ष का मूल्य आँकने में असफल हो सकते हैं।

7. कुटज 'घर' अथवा 'घड़े' से उत्पन्न व्यक्ति को, 'कुटिया' में उत्पन्न 'कुटकारिका' या 'कुटहारिका' (दासी) से उत्पन्न किसी व्यक्ति को कहा जाता है। इसी प्रकार कुटज के अनेक अर्थ हैं।

8. कुटज 'आग्नेय' अथवा 'कोल' भाषा-परिवार का एक शब्द है।

9. अपराजेय जीवनी-शक्ति का स्वामी कुटज नाम और रूप दोनों में अद्वितीय है। सूखी, नीरस और कठोर चट्टानों के मध्य प्रतिकूल परिस्थितियों में जीते हुए भी वह पुष्पों से लदा रहता है तथा अपने मूल नाम की हजारों वर्षों से रक्षा करता हुआ हमें भी जीवन का उद्देश्य सिखाता रहता है।

10. कुटज के समान हमें अपने संकीर्ण स्वार्थ के लिए नहीं, वरन् परमार्थ के लिए स्वाभिमानी, आत्मनिर्भर, कर्मठ, त्यागी और दूसरों की भलाई के लिए भी कुछ सोचना चाहिए।

11. उपकार, अपकार की बातें छोड़कर हमें 'कर्म' में आस्था रखनी चाहिए तथा यथासंभव अच्छे कर्म करते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

12. सुख और दुख की भावना हमारी मानसिक भावना से ही उपजती है, अतः हमें मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

13. निबंधकार की भाषा-शैली अद्भुत तथा शब्द-संपदा अद्वितीय है। लेखक ने प्रस्तुत निबंध में सभी-भावों, शैलियों, शब्दों, भाषा-रूपों का समुचित सामंजस्य किया है।

14.6 चित्रात्मक प्रस्तुति

कुटज

- प्रमुख संदर्भ
  - हिमालय
  - कालिदास
  - शिव-पार्वती
  - याज्ञवल्क्य
  - शांतिपर्व (महाभारत)
  - राजा जनक
- परिवेश और संस्कृति
  - हिमालय प्रदेश का वर्णन
- मानव मूल्य
  - संघर्षशीलता
  - आत्मनिर्भरता
  - स्वाभिमान
  - त्याग
- निबंध: तत्व
  - भूमिका
  - विषयवस्तु
  - उपसंहार
- निबंध: शैलियाँ
  - भावात्मक
  - विवेचनात्मक
  - गवेषणात्मक
- भाषा
  - सूक्तियाँ
  - मुहावरे
  - अपरिचित शब्द
- रचनाकार
  - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अनेक निबंध संग्रह:- अशोक के फूल, शिरीष के फूल आम फिर बौरा गए आदि

14.7 सीखने के प्रतिफल

- अपने परिवेशगत अनुभवों पर अपनी स्वतंत्र और स्पष्ट राय व्यक्त करते हैं।
- प्रमुख जीवन-मूल्यों पर अपने साथी से चर्चा करते हैं।
- अपने अनुभवों एवं कल्पनाओं को सृजनात्मक ढंग से लिखते हैं, जैसे- कोई यात्रा-वर्णन, संस्मरण, डायरी आदि लिखना।
- साहित्य की विविध विधाओं में प्रयुक्त भाषा की बारीकियों पर चर्चा करते हैं (जैसे - विशिष्ट शब्द-वाक्य-शैली-संरचना)।
- विभिन्न साहित्यिक विधाओं को पढ़ते हुए उनके सौंदर्य पक्ष एवं व्याकरणिक संरचनाओं पर चर्चा करते हैं।
- प्राकृतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों, घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को बोलकर/लिखकर व्यक्त करते हैं।
- भाषा-कौशलों के माध्यम से जीवन-कौशलों को आत्मसात करते हैं और अभिव्यक्त करते हैं।

14.8 योग्यता विस्तार

(क) लेखक परिचय

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी हिंदी जगत के श्रेष्ठ निबंधकार, उपन्यासकार, आलोचक के

चित्र 14.4 : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

अतिरिक्त कुशल वक्ता और सफल अध्यापक रहे हैं। इनका जन्म सन् 1907 में बलिया जिले के एक गाँव में हुआ था। इनका नाम हजारीप्रसाद कैसे पड़ा, यह भी एक रोचक घटना है। जिस दिन इनका जन्म हुआ, उस दिन इनके पिता को हजार रुपए की आमदनी हुई थी।

आप बहुत ही हँसमुख स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके मुक्त भाव की हँसी के ठहाकों को लोग आज भी याद करते हैं।

द्विवेदी जी का अध्ययन-क्षेत्र बहुत व्यापक था। संस्कृत, हिंदी, प्राकृत, अपभ्रंश बांग्ला आदि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार था, इसके अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र, संस्कृत आदि विषयों का गहरा ज्ञान था। इसका अंदाज़ा आपने यह निबंध पढ़कर लगा ही लिया होगा।

द्विवेदी जी कई विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। सन् 1957 में भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया। 19 मई, 1979 में इनका देहांत हो गया।

(ख) परोपकार, कार्पण्य दोष की निंदा, जीना-मरना ईश्वर के हाथ में होना अथवा मन की चंचलता पर काबू पाने के प्रयास का उपदेश 'गीता' में भी है, जैसे–

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

तुलसीदास ने भी कहा है – *परहित सरिस धर्म नहीं भाई।*
परपीड़ा सम नहि अधमाई।

तथा रहीम भी लिखते हैं कि –

गोधन, गजधन, बाजि धन और रतन धनि खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान।

इन्हें पाठ में आए प्रसंगों से जोड़कर देखिए कि ये कहाँ, किस प्रसंग के भाव से जुड़ते हैं? आप सोचिए कि कबीरदास ने भी तो इन्हीं भावों को लेकर कहीं कुछ नहीं कहा था? यदि हाँ, तो लिखिए।

(ग) आचार्य द्विवेदी के 'अशोक के फूल', 'शिरीष के फूल', 'आम फिर बौरा गए', 'कल्पलता' आदि निबंध पढ़िए।

14.9 पाठांत प्रश्न

1. कुटज वृक्ष की किन्हीं सात विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. प्रस्तुत निबंध द्वारा लेखक क्या संदेश देना चाहते हैं? लिखिए।
3. विषम परिस्थितियों में पड़े व्यक्ति को कुटज किस प्रकार सहारा देता है?
4. निम्नलिखित गद्यांशों की अपने शब्दों में सप्रसंग व्याख्या कीजिए:

   (क) याज्ञवल्क्य ने जो बात ....कृपण बना देता है।

   (ख) जो समझता है कि वह ....अभिमान नहीं होना चाहिए।

   (ग) जीना चाहते हो ....उल्लास खींच लो।

   (घ) दुनिया में त्याग नहीं है............गलत ढंग से सोचना है।

   (ङ) दुख और सुख तो मन के विकल्प हैं..........जाल बिछाता है।
5. नाम के निर्धारण में समाज की क्या भूमिका है?
6. प्रस्तुत निबंध से पाँच अंग्रेजी के, दस संस्कृत के तथा दस अरबी-फारसी के शब्द छाँटकर लिखिए।
7. हजारीप्रसाद द्विवेदी के भाषा-संबंधी दृष्टिकोण पर टिप्पणी लिखिए।

14.10 उत्तरमाला

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (ग) 2. (ख) 3. (घ) 4. (ख) 5. (क)

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

14.1 1. (ख) 2. (ख) 3. (क) 4. (घ)

14.2 1. (ग) 2. (ग) 3. (घ)

14.3 1. (ख) 2. (क) 3. (ग) 4. (क)

14.4 1. (घ) 2. (घ) 3. (ग) 4. (घ)

14.5 1. (ग) 2. (क)